© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास : ग्राम्य जीवन से साक्षात्कार

नरेन्द्र देव पाण्डेय
शोध–निर्देशक
पूजा
शोधछात्रा (हिन्दी विभाग)
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
कोटवा–जमुनीपुर, दुबावल, इलाहाबाद।

शोध आलेख सार– उपन्यासों में कथ्य से लेकर शिल्प तक नवीनतम प्रयोग किये गये। हिन्दी उपन्यासकारों ने पाश्चात्य विचार दर्शन से प्रभाव ग्रहण करते हुए भारतीय मानसिकता और वैचारिक दर्शन की स्थापना का एक दृष्टिकोण भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। केशव प्रसाद मिश्र ग्राम्य–जीवन के कुशल चितेरे है। उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि गाँव के रीति–रिवाज, बोल–चाल, व्यवहार आँखों के सामने आ जाते हैं। उनके उपन्यास ग्रामीण जीवन की संक्रमणशील परिस्थितियों से साक्षात्कार कराते हैं। यही केशव प्रसाद मिश्र जी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।
मुख्य शब्द–केशव प्रसाद मिश्र, उपन्यास, ग्राम्य, जीवन, मानसिकता, वैचारिक, साक्षात्कार।

बीसवीं शताब्दी के समाप्ति से पूर्व हिन्दी उपन्यासों ने एक लम्बी यात्रा पूरी कर ली थी। इन उपन्यासों में कथ्य से लेकर शिल्प तक नवीनतम प्रयोग किये गये। हिन्दी उपन्यासकारों ने पाश्चात्य विचार दर्शन से प्रभाव ग्रहण करते हुए भारतीय मानसिकता और वैचारिक दर्शन की स्थापना का एक दृष्टिकोण भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। इस दिशा में यह कहना उचित होगा कि हिन्दी में एक ओर जहाँ नवीन औपन्यासिक प्रयोगों ने 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'चाँदनी के खण्डहर' (गिरधर गोपाल), 'डूबते मस्तूल' (नरेश मेहता), 'एक इंच मुस्कान' (राजेन्द्र यादव व मन्नू भण्डारी), 'मछली मरी हुई' (राजकमल चौधरी), 'राग दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'अंधेरे बंद कमरे' (मोहन राकेश), 'काली आँधी' (कमलेश्वर), 'टूटते इन्द्रधनुष' (प्रभा सक्सेना) और 'चितकोबरा' (मृदुला गर्ग) जैसी कृतियाँ दी, वहीं दूसरी ओर नवीन जीवन मूल्यों, संक्रमणकालीन मूल्यों और परिवर्तित मूल्यों की एक पृष्ठभूमि को भी चित्रित किया। हिन्दी उपन्यासों में निरन्तर परिवर्तित परिवेश और मूल्यों के साथ ग्राम्य चेतना के

प्रति रूझान भी दिखाई पड़ा। इसी श्रेणी के अन्तर्गत एक उपन्यासकार केशव प्रसाद मिश्र भी हुए, जिन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का सजीव एवं वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया।

मिश्र जी का प्रथम उपन्यास 'कोहबर की शर्त' (1965) है, जिसका कथा–धरातल उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दो गाँव बलिहार और चौबेछपरा है। इन्हीं गाँवों को केन्द्र बनाकर उनके आस–पास कथा का ताना–बाना बुनते हुए मिश्र जी तदयुगीन परिस्थितियों का चिन्तन करते हैं। उपन्यासकार मिश्र जी के शब्दों में– ''उत्तर प्रदेश में बलिया से पूरब, तीसरा स्टेशन रेवती उतर कर चलने पर लगभग तीन मील पूरब और दक्षिण के कोने पर एक गाँव है बलिहार। चारों ओर पाँच–सात गाँवों से घिरा हुआ। इन गाँवों को उत्तर और पूरब से वृत्ताकार घेरती हुई रेल की पटरियाँ बिहार राज्य में प्रवेश कर गयी हैं। पश्चिम–दक्षिण में गंगा–सरयू की जलधाराएँ हैं। दोआब में बसे हुए ये दो गाँव–बलिहार और चौबेछपरा ही इस उपन्यास की कथा–भूमि है।''[1]

इसी प्रकार इनका दूसरा उपन्यास– 'काली दीवार' (1977) है, जिसमें इन्होंने शेष होते हुए सामन्तवाद के परिप्रेक्ष्य में बलिया के एक गाँव बभनौली को केन्द्रस्थ कर कथावस्तु का विस्तार किया।

उपर्युक्त उपन्यासों के कथानकों के आधार पर ग्रामीण अंचल स्वीकार करते हुए मिश्र जी के चलने की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि वे स्वयं उस ग्राम्य परिवेश की सामाजिकता और सांस्कृतिक प्रतिबद्धता के प्रति गहरी ललक लिए हुए हैं। इन दो उपन्यासों (कोहबर की शर्त व काली दीवार) को छोड़कर अन्य उपन्यासों – 'गंगाजल', 'महुआ और साँप', 'क्या रोशनी मौत है', 'देहरी के आर–पार' और 'उस रात के बाद' में मिश्र जी अपने बलिया के गाँवों को जैसे भूल ही गये हैं। वे अपने प्रथम उपन्यासों के कथा धरातल से उठकर अन्य औपन्यासिक कृतियों में नगर की ओर और नगरीय सभ्यता की ओर मुड़ गये।

हिन्दी उपन्यासों के नवीन प्रयासों की दिशा में आंचलिक उपन्यास अपना अलग महत्त्व रखते हैं। शायद हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति ने ही मिश्र जी को भी आकर्षित किया। यह कहना समीचीन होगा कि आंचलिक उपन्यासों के अपने कथ्य और शिल्प होते हैं और ये उपन्यास में सर्वत्र सघन रूप से समाहित रहते हैं। मिश्र जी का 'कोहबर की शर्त' उपन्यास भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है। डॉ0 रूक्ष्मणि पटेल के शब्दों में– ''कोहबर की शर्त' एक आंचलिक उपन्यास है। ग्राम्य जीवन की कथा का चित्रण होने के कारण इसके सभी पात्र गाँव से जुड़े हैं। अतः उपन्यास के संवाद संक्षिप्त, सरल, कथानक को आगे बढ़ाने वाले, पात्रांकन करने वाले, वातावरण की सर्जना तथा उद्देश्यों की व्यंजना

करने वाले हैं। उपन्यास में संवादों की भरमार है, फिर भी सारी की सारी संवाद योजना सहज और वास्तविक बन पड़ती है।''[2]

मिश्र जी के 'कोहबर की शर्त' में बलिहार और चौबेछपरा गाँवों का चित्रण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्र जी ने अपने बचपन की यादों की कसमसाहट में ही कथा जीने की कोशिश की है। इसी प्रकार 'काली दीवार' में तिवारी परिवार के पकवा मकान में छटपटाती संस्कारिता और सामन्ती मानसिकता के संचरण का आधार ग्रहण कर ग्राम को जीवन्त बनाने में सफल हुए है। ग्राम को जीवन्त बनाने में जिस संस्कारजन्य व्यवहार–लोक व्यवहार को चित्रित किया गया है, वह प्रेमचंद की भाँति टाइप बनकर आया है। यही कारण है कि कथा धीमी गति से इस प्रकार आगे बढ़ती है कि पाठक यह समझ जाता है कि आगे कथा क्या मोड़ लेगी।

इस प्रकार मिश्र जी ने इन दोनों उपन्यासों में कथक्कड़ी शिल्प के माध्यम से ग्राम्य–स्तर पर उभरती समस्याओं का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है। 'काली दीवार' में मिश्र जी गाँवों में सामन्तवाद जैसी विकराल समस्या को प्रस्तुत करते है।– ''कचहरी से रुपये वापस करने की मोहलत जितने दिनों की रामवचन को मिली, उतने दिनों में उसके उतने कर्म हो गये। बैल और भैंस बेच देने पर भी कुल नौ सौ मिले। पाँच सौ बेटी के तिलक के लिए रखे थे, उसे मिलाकर भी चौदह सौ ही हुए फिर भी सौ रुपयों की कमी थी। इन सौ रुपयों के लिए रामवचन लोगों के पास पागलों की तरह दौड़ता फिरा था।''[3] ठनठन तिवारी के द्वारा सताये गये रामवचन की दयनीय दशा को दिखाते हुए लेखक कहता है– ''धँसी हुई आँखों वाले 35 साल के रामवचन से आगे बात न निकल सकी, तालू से जैसे जीभ चिपक गयी थी। हाथ जोड़कर असीम दीनता से बोला ''मूल तो आठ सौ ही थे भइया, सूद लेकर अधिक से अधिक दस सौ हुए सौ दो सौ मुकदमें के खर्च में रख ले फिर भी दो तीन सौ अधिक दिया है.....और रामवचन ठनठन के पैरों पर गिर पड़ा।''[4]

मिश्र जी उपन्यास 'कोहबर की शर्त' के ग्राम्य जीवन के सहज संस्कारों, लोक संस्कारों के टकराव और परिणति से जो कुछ घटते हुए देख पाते हैं, उससे एक ऐसे यथार्थ की प्रतीति होती है जो कथाकार का सत्य है। कथाकार का सत्य मूलतः उसकी आनुभूतिक वैचारिकता को ग्राम्य क्षेत्र का परिवेश, प्रमाणिकता और व्यापकता प्रदान करता है। 'कोहबर की शर्त' में लोक संस्कृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। ओंकार और रूपा की शादी में हुए सभी वैवाहिक रीति–रिवाज, होली के उत्सव पर गाये जाने वाले गीत, रूपा

की मृत्यु पर उसका अंत्येष्टि संस्कार आदि लोक संस्कृति को दर्शाते हैं। 'कोबहर की शर्त'का एक ग्राम्य गीत द्रष्टव्य है–

''हाजीपुर के हाट में हेराइल हो,
मोरे नाक की झुलनिया,
सासु मोरा मारे, ननदि गरियावे
सइयाँ मारे बाँस की कोइनियाँ हो,
सासु खोजवावे, ननद खोजवावे
पिय ढूँढे नाक की निशनियाँ हो।''5

काली दीवार में भी उपन्यासकार अपने कथासत्य के लिए 'पकवा मकान' में पल रही ध्वस्त सामन्तवादी चेतना से अनुप्रेरित होता है और बच्चन के यथार्थ जगत से उसका समाहार पाने की चेष्टा करता है। लेकिन सामन्तवादी–चिन्तन का कथा सत्य उसे बाध्य कर देता है। परिणाम यह होता है कि नये जीवन का नवीन सत्य स्वीकृति के अभाव में कलकत्ता तक नहीं पहुँच पाता और न कलकत्ता को उस गाँव में आत्मलीन ही कर पाता है। यही कारण है कि उपन्यासकार उस ग्राम्य सत्य के परिप्रेक्ष्य में सही दिशा नहीं पकड़ पाता। परिणामस्वरूप गाँव के जिस ताने–बाने में मिश्र जी उलझकर रहे गये थे, उसकी मुक्ति उन्होंने ग्राम्य परिवेश के चित्रण से पलायन करने के अनुभव में की। वे कथा सत्य के लिए ग्राम्य सत्य के स्थान पर नगर सत्य को स्वीकार करने में इसीलिए नही हिचकिचाएं क्योंकि ग्राम्य स्तर पर लोक संस्कारों का सामन्ती रूप आज भी अपने पैर फैलाये हुए है और वही एक पुराना मुद्दा आज भी शोषण–शोषित के भेद पर स्थिर रह गया है। इस स्तर पर आकर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि मिश्र जी ने जिन समस्याओं का चित्रण 'काली दीवार' के माध्यम से किया है वहाँ समाधान का कोई उल्लेख नहीं है। बच्चन सभी सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से विमुख व्यक्ति संस्कारिता का प्रतीक बन जाता है।

ग्राम्य चित्रण के साथ ही मिश्र जी का यह आग्रह भी बना रहा है उसमें क्षेत्रीय रूप से व्यवहृत शब्दावली भी रहे। तभी दोनों कृतियों में ग्रामीण शब्दावली की भरमार है। उन्होंने कवन, कसकर, चमाइन, छपटी, जवार, नहान, आन्हर, बयार, बिरवा, शहवालिया, साँझ, लौंड़ा, सेनुर, साँवा, हेंगाई आदि शब्दों का

व्यापक पैमाने पर प्रयोग किया है। इसके साथ ही उनके दोनों उपन्यासों में ग्रामीण मुहावरों व कहावतों का भी भरपूर प्रयोग मिलता है। यथा– बाई गुम हो जाना, दुआर खोद मारना, मोछा बोर बोर के खाना, बझ गये, दाल भात में ऊँट का ठेहुन बनना, ललाट दो अंगुल और चौड़ा होना, जो रोगिया भावे सो वैदा फुरमावे, बाँड़ बाँड़ भी गये, नौ हाथ पगहा भी लेते गये, भले धिया रहिहै कुँवारी हो आदि। यह स्थिति औपन्यासिक कृतित्व की महत्ता को स्थापित करती है। वर्णनात्मकता इन दोनों उपन्यासों का मूल है और इसीलिए देशकाल और परिवेश के चित्रण में कथा अपनी तीव्रता ग्रहण नहीं कर सकी है।

भाषा शैली का जो रूप 'कोहबर की शर्त' और 'काली दीवार' में मिलता है, उससे यह भलीभाँति विदित होता है कि मिश्र जी में अपने क्षेत्रीय व्यवहारिक शब्दावली के प्रति विशेष मोह है। ये शब्दावली अभिव्यक्ति के धरातल पर कथा के भाव जगत को तीव्रता के साथ व्यंजित करने में सफल है। यह कहना कि सहज शब्दावली में आन्तरिक व्यंजना का समाहार है, उन स्थलों से प्रमाणित होता है जहाँ मैनावाली और सखिया के संभाषण है। जिसमें नारीजन्य मानसिकता का स्पर्श बहुत ही स्पष्ट है। जहाँ मैनावाली (सत्या) प्रेमपूर्वक सखिया को सौत कहकर संबोधित करती है, यहाँ तक कि बच्चन को उसका यार कहकर उसके मजे लेती है।

दोनों उपन्यासों में कथा विकास पिरामिडी मुद्रा में होता है और अन्त भी तीव्र गति से होता है। 'काली दीवार' का कथा विकास कलेबर के अनुरूप धीमी गति से अन्त तक पहुँचता है और 'कोहबर की शर्त' की भाँति दुखान्त न होकर सुखान्त होता है।

मिश्र जी के इन दोनों उपन्यासों में ग्रामीण क्षेत्रों की प्रमुख परम्पराएँ, वहाँ की बोली, वहाँ के रहन–सहन, रीति–रिवाज, मुहावरे और कहावते आदि दिखाई देते हैं। इनके उपन्यास ग्राम्य–जीवन का उपहास नहीं करते बल्कि आज के टूटे हुए गाँव के प्रति हमारी चेतना को जोड़ते चलते हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मिश्र जी ग्राम्य–जीवन के कुशल चितेरे है। उन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि गाँव के रीति–रिवाज, बोल–चाल, व्यवहार आँखों के सामने आ जाते हैं। उनके उपन्यास ग्रामीण जीवन की संक्रमणशील परिस्थितियों से साक्षात्कार कराते हैं। यही केशव प्रसाद मिश्र जी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

संदर्भ सूची

1. कोहबर की शर्त, केशव प्रसाद मिश्र, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण (2015), पृ0सं0 5
2. कोहबर की शर्त एक अध्ययन, डॉ0 रूक्ष्मणि पटेल, शान्ति प्रकाशन 1780 सेक्टर–1 दिल्ली बाई पास रोहतक–124001, हरियाणा संस्करण (2014), पृ0सं0 124
3. काली दीवार, केशव प्रसाद मिश्र, स्मृति प्रकाशन, 124 शहराराबाग, इलाहाबाद, संस्करण (1977), पृ0सं0 10
4. वही, पृ0सं0 11
5. कोहबर की शर्त, केशव प्रसाद मिश्र, पृ0सं0 49